दर्द के घेरे

मेघा सिंह चौहान

'अनुक्रमणिका'

☆ दर्द के दायरे ☆

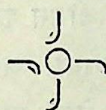
संस्करण — प्रथम १९९२

मूल्य — २०-रुपये

दर्द के दायरे

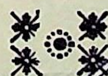
डा० राम स्वरूप आर्य जी
(हिन्दी विभागाध्यक्ष)
वर्द्धमान कालेज बिजनौर
को
सादर भेंट

मेघा सिंह चौहान
30/12/92



मेघा सिंह चौहान

कवि कुल प्रकाशन



मुद्रक:—
हरिहर प्रिंटिंग प्रेस
मो० कोट पूर्वी, सम्भल-२४४३०२
मुरादाबाद (उ० प्र०)

'समर्पण'

होश संभालते ही जिन्होंने जीवन को परिश्रम, कर्त्तव्य पालन एवं
उत्तर दायित्व का पर्याय पाया, अपनी महत्वाकाँक्षाओं, सुख एवं
सुविधाओं को तिलांजलि देकर हम अनुजों के भरण-पोषण तथा
शिक्षा-दीक्षा के दायित्व को निष्ठा पूर्वक पितृवत
निभाया, 'सादा जीवन उच्च विचार' को अपने
जीवन अपनाया, जो सम्पूर्ण परिवार के लिए
प्रत्येक परिस्थिति में नाम के शंकर नहीं
अपितु वास्तविक शंकर की भूमिका
निभाते रहे, उन अग्रज (स्व०)
श्री शंकर सिंह जी की
पुण्य स्मृति में यह

'दर्द के दायरे'

संग्रह सादर समर्पित है ।

मेघा सिंह चौहान

'सरस्वती-वन्दना'



शारदे ! हरो मूढ़ता मन की।
ज्योतित करो बुद्धि इस जन की।

भाव-ग्रन्थियां देवी ! खोलो,
उनमें मधुर मधु रस घोलो,

भरो गंध उनमें गुण-गण की ।
शारदे ! हरो मूढ़ता मन की ।

पुस्तक के प्यालों में भर-भर,
मिश्रण यह मृदु मंजुल सुन्दर,

बांटू, प्यास मिटे जन-जन की ।
शारदे ! हरो मूढ़ता मन की ॥

मेघा सिंह चौहान

साहित्य मानव मन का दर्पण है

मन में बसी भावनाओं को

मन में बसी इच्छाओं को

मन में बसी कुंठाओं को

कुशलता के साथ अभिव्यक्त करना ही

कुशल साहित्यिक चितेरे की योग्यता है

इस कार्य में

श्री मेघा सिंह चौहान

पूर्ण परिपक्वता के साथ हमारे सामने हैं।

मर्मस्पर्शी रचनाओं के लिए मेरी शुभकामनायें समर्पित हैं।

आचार्य मुक्तेश माथुर

✽ प्रस्तावना ✽

'दर्द के दायरे' में संग्रहीत श्री मेघासिंह चौहान जी की काव्य–रचनाओं का सृजन कवि की एक अन्य उपलब्धि है। पहली बात तो यह कि दर्द जैसी अकिंचन स्थिति को काव्य का विषय बनाने का प्रयास ही सहअस्तित्व का बोध दे रहा हैं। दूसरी बात यह कि दर्द को अकिंचनोयता में चरम भव्यता की अनुभूति कर उसकी विशुद्धता के उपक्रम का मर्यादा की मंगल यात्रा के रूपक में ढालकर ग़ज़ल की अध्यात्म के साथ एकात्म की स्थिति में पहुचाना हैं। इसी भाव से श्री मेघा सिंह चौहान की रचनाओं का यह संग्रह मात्र गज़ल गोई नहीं है, वह एक भावुक कवि की आत्मा का संगीत है—कवि जो त्याग और साधना का जोवन्त स्वरूप है और रचनाएँ जो आत्म विशुद्धि के लक्ष्य पर सजगता से बढ़ने के क्रम में मर्यादा के साथ मांगलिकता को साधती है। कवि इन काव्य रचनाओं में साधना से अर्जित जीवन-दर्शन को अनुभूति में समेटकर जन–सामान्य के मन में कुछ दायित्व बोध भर देना चाहता है। अनुभूति पीर और सम्यक संप्रेषण का जो योग कवि की इन रचनाओं में प्रस्फुटित हुआ है– उसमें काव्यानुभूति की अन्तरंग लय ने इसे कविता का रूप दिया है।

प्रारम्भ में ही यह प्रश्न उठजाना अप्रासंगिक नहीं है कि 'दर्द के दायरे' में संग्रहीत काव्य-रचनाओं में हिन्दी गजल का जो रूप उजागर हुआ है, उसे ग़ज़ल के परम्परागत परिभाषा वाले फ्रेम में जड़ा जाये अथवा नहीं। परिभाषा की दृष्टि से अधिकांश रचनाऐं गंज़ल की सीमाओं को छूती हैं। पहला पृष्ठ आँख के सामने आते ही ग़ज़ल के मिज़ाज के अनुरूप परिदृश्य मुखर हो जाता है।

महफिल में अंधेरों की, जग में, दिखते हैं उजाले दूर खड़े।
पर हम तो सदा दीपक की तरह, जलते ही रहे, मिटते भी रहे॥

ग़ज़ल का यह मिज़ाज आगे भी बरक़रार बना हुआ है।

उर्दू-अदब में श्अरे पत्यात्मक काव्य–विद्या की उन दो पंक्तियों अथवा मिसरों को कहा जाता है जिसकी रचना किसी छन्द के अन्तर्गत नियमानुसार हुई हो। साथ ही जिसमें काफ़ियाँ और रदीफ़ का भी समुचित प्रयोग हुआ हो; श्अरे की अपनी विशेषता अपने आप में समग्र कथ्य की प्रस्तुति करना भी है। कुल मिलाकर हर श्अरे का मौजूं होना जरूरी है। यानि की नियमानुसार होना। उर्दू की जमीन पर हिन्दवी गज़लगो श्री मेघासिंह चौहान ने शायद इसीलिए कहना उपयुक्त समझा–

यूँ तो दर्पण कभी बोले तो झूठ ही बोले
इनके दर्पण में जो जंचता नहीं, इन्सान नही।

'दर्द के दायरे' में पीड़ा कुछ इस मार्मिकता से व्यक्त हुई है कि करुणा साकार होकर उभरती जाती है। इस क्रम में कवि का जीवन-दर्शन भी परिभाषित होता है। कवि की इन रचनाओं में प्रस्तुत यह दर्शन आरोपित नहीं दीखता अपितु एक प्रसंग और परिवेश से उद्घाटित होता अनुभव होता है।

ग़ज़ल की अपेक्षाओं के अनुरूप 'दर्द के दायरे' में सृजन के अनेक पक्ष समाहित हैं। इनमें कहीं रोमांस है भी तो वह अनुभूतिपरक तो है ही, अध्यात्मिक प्रकार का भी है—

अपना कहने को तो एक खुदा ही अपना,
अपने कहने में तो वो भी न कभी चलता हैं।

या फिर--

आदमी चलता है तो जिन्दगी भी चलती है,
चाल से हाल है, गर चाल नहीं, हाल नहीं।

वस्तुत: 'दर्द के दायरे' की रचनाओं में कविता का अन्तरंग स्वरूप प्रतिबिम्बित है और ग़ज़ल के आधारभूत सिद्धान्तों का दिग्दर्शन भी है। संग्रह की रचनाओं में प्रसंगों का, प्रसंग में से प्रसंग की उद्भावना का, तत्व बोध के शिखरों को देखने समझने का, और लौकिक व पारलौकिक जिज्ञासाओं को ज्ञापित करने वाले चित्रों का प्रस्तुति-निरूपण सहज एव स्वाभाविक स्तर पर हो सका है। मानवीय भावनायें, गुण और दोष इनके माध्यम से अभिव्यक्ति पास के हैं।

श्री मेवा सिंह चौहान की रचनाओं का एक स्वर जहाँ रसास्वादन देता हैं, वहीं उनमें आज के जीवन के ताजे सन्दर्भ हैं. यथा—

'सोये हुए है घर के पहरेदार, क्या करें ?
घर में घुसे हुए हैं गद्दार, क्या करें ?

❂ ❂ ❂ ❂ ❂

इन्सान भीड़ में गया है खो यही कहीं
पहचान ही नहीं है, खबरदार क्या करें ?
है जिन्दगी गिरवी यहाँ. बिकी हुई जुबाँ
इन्साफ भी बिके तो गुनहगार क्या करें ?

आगे एक और ग़ज़ल में भी—

शोरोगुल ! कैसा यह हंगामा हुआ बस्ती में ?
क्या कोई भूल से इंसान अभी बाकी है।

इन मिसरों में आज के प्रसंगों के अनुरूप आधुनिक समाज व्यवस्था का विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है। सीधा–सपाट ढग भी है और लक्षणा–व्यंजना भी।

एक कवि अपनी अनुभूति ही व्यक्त कर सकता है। दर्द से बिभुक्ति तो 'दर्द के दायरे' तोड़ने से ही संभव हो सकती है और इस सम्भावना को साकार करने का नाम कबि की भाषा में पुरुषार्थ है।

इस संग्रह की रचनाएँ गज़ल है या अनुभूति कहना कठिन है। फिर भी इनमें जीवन के भोगे हुए क्षणों का मर्यादित अंकन है। कवि के इमानदार क्षणों में जन्म लेने वाली और हिन्दी गज़ल कही जाने वाली ये काव्य-रचनायें विश्वसनीय अभिव्यक्ति का माध्यम है।

श्री मेघा सिंह चौहान की काव्य रचनाओं का यह दूसरा संग्रह है। इससे पूर्व 'बूदें दर्द को' में उनके कबि मन की स्पष्ट झलक देखी जा चुकी है। इनकी रचनायें सामाजिक जीवन की सच्चाइयों को विशेष रूप से उभारती हैं और प्रणय के कोमल क्षणों को भी अभिव्यक्ति के नये रूप में प्रस्तुत करती है।

और अन्त में इतना अवश्य कि जब हम सटीक मुक्तक और गीतों की दुनियाँ से निकलकर गज़ल के मंच पर जा खड़े होते है तो शिल्पगत अस्पष्टता का आभास होता है। 'दर्द के दायरे' में संग्रहीत गज़लों को पढ़कर ऐसा आभास हो ही उठता है। कि कहीं-कहीं कवि की लय और गति इन गज़लों में टूटती सी प्रतीत होती है। फिर भी कवि के गज़ल संग्रह से इतनी आशा भी बंधती है कि दर्द जब दायरे तोड़ेगा तो समय के साथ साथ गज़लों में कलात्मकता को जो कमी है वह निश्चय हा दूर हो जायेगी। आगे भी इतनी संभावना तो है ही कि 'बून्दे दर्द को' के बाद 'दर्द के दायरे' में संग्रहीत ये गज़ले कवि के अन्तस्तल में बस रहे गीतकार की उपस्थिति का अहसास सौंपती हैं इस भावना के साथ हिन्दी पाठकों के समक्ष इन हिन्दी गज़लों की उपस्थिति सामयिक साहित्यिक बोध की परिचायक हैं।

'दर्द के दायरे' में मैंने झांकने का अवसर पाया हैं। अतः मेरे ये शब्द भूमिका, आमुख और प्राक्कथन की सोमा में नहीं बँध सके हैं। यह उस कवि के प्रति मेरी ओर से संस्तुवन मात्र है जिसको काव्य–प्रतिभा से हिन्दी जगत को एक सार्थक और जीवन्त काव्य पक्ष की आशा भविष्य में भी बँधी है।

मुरादाबाद
25-8-92

उमेशपाल वरणवाल
पूर्व प्राध्यापक

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ सं०	पंक्ति सं०	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	ही	में
१३	३	जागे	जामे
१७	१२	बड़ा	धड़ा
१९	६	का	की
२६	१३	गैरो	गैरों
३७	१०	आक	आंके
४२	१४	यहाँ	जहाँ
५०	५	जखीरा	जजीरा
५४	३	भी	थी
५९	७	मिला	निला
६६	११	बड़ा	बड़ी
७०	२	बहरे	बहरें
७५	१०	को	का

१

हम बने कलम को नोक सदा, लिखते ही रहे, घिसते भी रहे,
चक्की में चने संग घुन की तरह पड़ते ही रहे, पिसते भी रहे।

नयनों में किसी के नीड़ बना, जगवालों से छुपना चाहा,
पर बन नासूर किसी उर का, गलते ही रहे, रिसते भी रहे।

बाजार में इस जग को, सारी चीजें आसानी से मिलतीं,
पर हम क्रेता होकर भी सदा बिकते ही रहे, फिकते भी रहे।

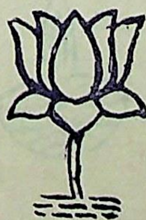
आदर्शों की मरुभूमि ही मृग-तृष्णा ने हर पग पे छला,
पर हम प्यासे राही की तरह, भगते ही रहे, गिरते भी रहे।

ठोकर तो बहुत खायी हमने, फिर भी किसी "काबिल" हो न सके,
हम तो शतरंज के मोहरे बने, चलते ही रहे, पिटते भी रहे।

आये थे यहां मानव की तरह, जीने की गारंटी लेकर,
पर हा ! वाहन बनकर बेबस, लदते ही रहे, पिटते भी रहे।

महफिल में अंधेरों की, जग में, दिखते हैं उजाले दूर खड़े,
पर हम तो सदा दीपक की तरह, जलते ही रहे मिटते भी रहे।

—काबिल



२

फूल कहो या शूल कहो, इसमें कोई मान-अपमान नहीं,
अपने गुण-दोषों से जगमें, कोई भी जन अनजान नहीं।

औरों को उजाले हों हासिल, पी लेता है जहर अंधेरों का,
तिल-तिल जलता, मिट जाता दिया, क्या करता कोई अहसान नहीं।

पैदा हो तपिश से जब बूदें, गिर जाती हैं तपती धरती पर,
ये हद तो शराफत को देखो कि रहता तपिशका नाम नहीं।

बस्तियों में औ वीरानों में हैवान मिले, शैतान मिले,
या तो वे सब ही हैं 'वो' नहीं या हमको ही पहचान नहीं।

पूछो मंदिर के पुजारी से, पूछो मस्जिद के मुल्ला से,
अपने कर्मों से दोनों ने क्या किया खुदा बदनाम नहीं।

जो पूजते हैं पत्थर को भी भगवान बना इस दुनिया में,
दुःख-दर्दों से इन्सानों के उनको भी है कोई काम नहीं।

सिजदा करवाने की खातिर, जो रखता दुःखी है लोगों को,
वेदी पर बैठा मन्दिर में वह, पत्थर है भगवान नहीं।

□



३

भटकें हैं बहुत इस जग में हम, आवारा बादल की तरह,
छेड़ा है बहुत आकाओं ने, बेमतलब पागल की तरह।

आँखों में अजीजों के बसने की एक तमन्ना थी दिल में,
सुलगे तो बहुत, हम जल भी गये पर, हो न सके काजल की तरह।

महफिल में बुलाया, बैठाया और अंग लगाया मुस्काकर,
बाँधा खोला ही गया मगर सब पावों में पायल की तरह।

बेवा की जवानी से हम तो सिंदूर, सुहाग भी पा न सके,
खींचा है मसीहाओं ने बहुत, वैश्या के आँचल की तरह।

अपनों से भी ज्यादा चाहा, बरबाद हुए जिनकी खातिर,
लौटे हैं सदा उनके दर से बेइज्जत घायल की तरह।

कुछ हम हैं भले, कुछ वे भी भले, कुछ किस्मत हमने पायी भली,
क्या दोष है औरों को अपना व्यवहार नहीं सायल की तरह।

□

४

हार मानूँ कभी, मेरी आदत नहीं,
जीत ना भी सकूँ तो शिकायत नहीं।

सिर झुकाने को कहते है वे बन्दगी,
हाथ उठ जाए तो क्या इबादत नहीं ?

हाथ उठाने को वे मानते अपना पन,
सिर उठाना भी कोई बगावत नहीं।

हाथ उठते हमेशा दुआ के लिए,
हाथ ना भी उठे तो हिमाकत नहीं।

हाथ सिर पर ही रखते हमेशा हैं हम,
हाथ पर सिर भी आए तो आफत नहीं।

हम तो बस जानते हैं उठाना कदम,
क्या जहाँ में ये कोई लियाकत नहीं।

लड़ना गर मानते तुम दिलेरी नहीं,
चुप हो सहना भी कोई शराफत नहीं।

□

५

अपनी तस्वीर का भी यूँ तो इन्हें ज्ञान नहीं,
मगर इन सा जो नहीं है तो वो इन्सान नहीं।

यूँ तो दर्पण कभी बोले तो झूठ ही बोले,
इनके दर्पण में जो जंचता नहीं, इन्सान नहीं।

शाख से शाख पै उड़ बैठे तो बुरा क्या है?
शाख गिरने के नतीजों से ये अन्जान नहीं।

गुजरे गुलशन भी अगर दौरे खिजाँ से गुजरे,
ये वो बुलबुल हैं कभी छोड़ते जो गान नहीं।

हवा महल ये बनाते लगा के गाँठ हवा में,
हवा भी बांधना वर्ना कोई आसान नहीं।

छिपे न दाग तो दामन ही फैंक नंगे हैं,
लिहाजोशर्म क्या? पुतली हैं ये इन्सान नहीं।

आशिक हैं ये, अजीज इन्हें ताजोतख्त नहीं,
इन्हें अजीज है कुर्सी, कौमोइन्सान नहीं।

लगा के आग तमाशा ये देखें दूर खड़े,
जताना प्यार फिर इनका, क्या अहसान नहीं।

ये हाथ जिस पे धरें, उनकी खुदा खैर करे,
वो तो भस्म करने का इनको वरदान नहीं।

खुदा बचाए इन मसीहाओं रहनुमाओं से,
ये गनीमत है कि अंधा हुआ भगवान नहीं।

□

६

हर कोई हमको खुशनसीब लगे,
देखें, अपना भी कब नसीब जगे।

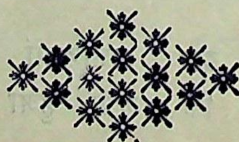
नाज उनकी वफा पै हमको है,
फिर भी हर कोई क्यों रकीब लगे।

पारसाओं के इस अजीज जहां में,
वजूद अपना ही कुछ अजीब लगे।

क्या कयामत है महफिलों में यहाँ,
नीम - पागल हर एक अदीब लगे।

दिल में गर कैद तमन्ना है; ठीक है,
पर हर - एक चेहरा भी सलीब लगे।

बढ़ रहे हैं सब तरफ अंधेरों के साये,
अब सबेरा कुछ अनक़रीब लगे।
□



७

दर - ओ - दीवार सभी धूप में नहाए हुए,
एक हम हैं पड़े साये में अलसाए हुए।

वो बेग़मों से करें हैं गम बाँटने की बात,
हम भी चेहरे पै हैं मुस्कान चढ़ाए हुए।

भूल ही की थी पनाह देके उन्हें हमने,
शान से दर पै खड़े पाँव अब जमाए हुए।

ठीक सोचा है, मगर ऐसा तो नहीं सोचा था,
धूप रोके हैं दरख्त अपने ही लगाए हुए।

लोग तो दांव लगाते हैं जिन्दगी के लिए,
जिन्दगी को ही हम दाव पर लगाए हुए।

हाथ खाली हैं, पास कुछ न तुम्हें देने को,
इसीलिए हूं दुआ में उन्हें उठाए हुए।

बिन तुम्हारे है बोझ ही तो जिन्दगी मेरी,
ढो रहा हूं जिसे अपना सर झुकाये हुए।

हम पै अहसान तुम्हारे हैं पता सबको,
मात हमको है मिली, आप सर झुकाए हुए।

८

यूँ तो दुनियां का चलन सबको बहुत खलता है,
इस पै बस भी तो किसी का न कोई चलता है।

उम्र बीती है भटकते अंधेरों में जिनकी,
चिराग उनके मजारों पै भी कभी जलता है।

बहारें आयी हैं, खुश हैं हर एक गुलबूटा,
दिल क्यों चुपचाप चमन का न जाने जलता है।

बेहया कहते हैं 'दिन में' जो सब जमाने को,
हुस्न से रातों में उनका भी खेल चलता है।

कसमों की राह में जो चले हैं रोंद के रस्मों को,
ताक़यामत यहाँ उनका ही नाम चलता है।

भीड़ में गैरों की तलाशें हैं लोग अपनों को,
हमें तो जान के अपना हर एक छलता है।

अपना कहने को तो है एक खुदा ही अपना,
अपने क़हने में तो वो भी न कभी चलता है।

□

९

न सही पास में कुछ फिर भी ईमान तो है,
न सही खास मगर हम भी इन्सान तो हैं।

क्या है आजादी से कुछ पा न सके गर,
तलाश जारी है, यकीन औ इमकान तो है।

हम परिन्दों को बहुत भाता है 'उड़ना' बस,
न सही ज्यादा खुला, पर आसमान तो है।

दर्दोगम दूर भले ही न कर सके कोई,
कह सुनाने को खुली मुंह में जुबान तो है।

न मिले बैठने भर को गर जगह, न मिले,
लेकिन चढ़ने को खुला पायदान तो है।

न सफर की है कोई फिक्र न मंजिल की है,
बढ़ रही काफिले में मेरी पहचान तो है।

कोई दे साथ मेरा या न दे, ऐ दोस्त मेरे,
मेरी "दीवानगी", "दीवानी" और "दीवान" तो है।

□

१0

चमन को देख के जमाना वो याद आया,
बनगया आप जो फसाना वो याद आया।

शबाब हुस्न औ इश्क की महफिल में,
रंग उनका ही जमाना वो याद आया।

नग्मों जाम की मस्ती में डूब कर,
उनका पहलू में समाना वो याद आया।

हटाके जुल्फों को आँखों में डूबके,
जो छेड़ते थे तराना वो याद आया।

ख्वाब में भी न बचाया कभी दामन,
तर्कमरासिम का बहाना वो याद आया।

क्या खूब बे खुदी में कटे वे दिन,
अब खुदी में भी जमाना वो याद आया।

□

११

आये हो आज घर मेरे, मैं बात क्या करूँ ?
गये बीत मद भरे वो लम्हात, क्या करूँ ?

दो राहे पै वफा के लुटी डोली प्यार की,
सिसक रहे अरमानों की बारात, क्या करूँ ?

गयी जिन्दगी की कब्र पै यादों के दीप में,
जल रहें हैं वे हसीं जज्बात क्या करूँ ?

दिल जख्मों से भरा हुआ, खामोश है जुबाँ,
मचल रहे लबों पै ये नग्मात, क्या करूँ ?

जुल्फों की ओट छिप के रहा पी है आज चाँद,
है कायदों की कैद मैं ये रात क्या करूँ ?

दिल में मेरे हो फिर भी मेरा हक तो कुछ नहीं,
बरहक तुम्हारे हुस्न की सौगात क्या करूँ ?

बाकी भी गुजरें बाहों में यूँ ही रकीब की,
इजहार दिल के और खयालात, क्या करूँ ?

□

१२

लाजवाब इस जहाँ में कोई सवाल नहीं,
वो बात और है कुछ की कोई मिसाल नहीं।

मेरा महबूब बेमिसाल जमाने भर में,
वो "हम सफर" भी कभी था, मेरा ख्याल नहीं।

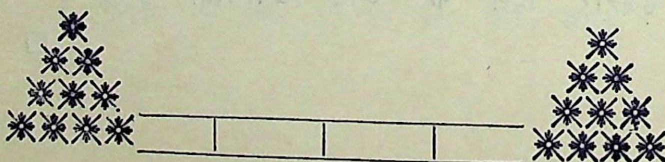
रास्ता भी है वही, मंजिल भी वही है लेकिन,
हम सफर साथ हैं शायद वो "हम ख्याल नहीं"।

हर दो राहे पै लगे हैं वो अजनबी से सदा,
मेरे दिल का तो कभी जाने वो हाल नहीं।

उनके चल साथ मैं जाना कि जिन्दगी क्या है,
'जिन्दगी राह है जिसकी कोई भी चाल नहीं'।

आदमी चलता है तो जिन्दगी भी चलती है,
चाल से हाल है, गरचाल नहीं हाल नहीं।

□



१३

संग दिल ने न कभी भी था कोई प्यार दिया,
हमने क्यों उसको जिन्दगी का अख्तियार दिया ?

जाये उल्फत में जहर घोल दिया नफरत का,
तन्हा तड़पाया और जीना भी दुश्वार किया।

जिस्म था बुत जफा - ओ - जुल्म का उसका,
अपनी ही आँखों का खुद क्यों न एतबार किया ?

मुझको ही मुझसे अजनबी सा किया जिसने,
किसलिए उससे हालेदिल का भी इजहार किया ?

होकर पत्थर के सहा हमने सभी जा - बेजा,
होके पत्थर के सनम उसने बेकरार किया ?

हद को कर पार भला कौन कहाँ लौटा है ?
दिले बेचैन ने क्यों उसका इन्तजार किया ?

दिल की बातें तो जुबाँ पर बदल भी जाती हैं,
लेकिन उसने तो न इन्कार, न इकरार किया।

बनाना बात है आदत जहाँ में लोगों की,
समझके, बूझ के कब किसने किससे प्यार किया ?

१४

सोए हुए हैं घर के पहरेदार क्या करें।
घर में घुसे हुए हैं गद्दार क्या करें?

आबेहयात के लिए भटके हैं आज सब,
पी रहे जहर हैं बफादार क्या करें?

बेअसर से हो रहे 'सरदार' ही यहाँ,
मौज में हैं आज 'असरदार' क्या करें?

इन्सान भीड़ में गया है खो यहीं कहीं,
पहचान ही नहीं है, खबरदार क्या करें?

जिन्दगी गिरवी यहाँ, बिकी हुई जुबाँ,
इन्साफ भी बिके, तो गुनहगार क्या करें?

बैठे हो सब जहाँ पै निशाना लिए हुए,
बचाब अपना भूखा जो शिकार क्या करें?

अपने लिए नहीं जो कुछ तो ना सही जनाब,
उनके लिए है जिनसे हमें प्यार क्या करें?

१५

यूं तो इन्सान ही सुल्तानो गदा होता है,
गर रहम दिल है तो वो तो खुदा होता है।

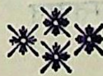
यूं तो काम आते सब लोग ही कभी न कभी,
वक्त पै दोस्त ही मुश्किलकुशा होता है।

दिल के मारों के मसीहा हैं वो कातिल भी हैं,
उनकी महफिल में तो ऐसा ही गुमां होता है।

कत्ल तो करते हैं पर जान नहीं लेते हैं वे,
उनके तो कत्ल का अन्दाज जुदा होता है।

ये नामुमकिन है कि इन्सान हो गम से खाली,
आग होती है जहाँ पै भी धुआँ होता है।

गर अकेले ही घिरे गम में तो गम क्या है,
जिनका कोई नहीं, उनका भी खुदा होता है।

१६

करने को काफी - कुछ काम अभी बाकी है,
दिन गया ढल है मगर शाम अभी बाकी है।

जो भी करना था किया डर तो नहीं है लेकिन,
लोग कहते हैं कि अंजाम अभी बाकी है।

शोरोगुल ! कैसा यह हंगामा हुआ बस्ती में ?
क्या कोई भूल से इन्सान अभी बाकी है ?

जलावतन किया इन्सान बस्ती वालों ने,
मिलके बांटेगें जो सामान अभी बाकी है।

नंगे हो नाच रहे लोग सारे बस्ती के,
लिहाज - ओ - शर्म का निशान नहीं बाकी है।

काले मुंह सबके, पहचान बड़ी मुश्किल है,
देलो आबाज, शायद नाम अभी बाकी है।

विके आज भी कई लोग इन बाजारों में,
वास्ते मेरे कई इम्तहान अभी बाकी है।

सह लिया वो तो सब जो भी किया दुनिया ने,
खुदा का आखिरी फरमान अभी बाकी है।

□

१७

कुर्सी जिनको मिली तो वो क्या हो गया?
और कुछ हो न हो, पर खुदा हो गया।

बोझ अब तक ही ढोते थे मुश्किल से हम,
चढ़ के कन्धों पै और वो खड़ा हो गया।

औरों के दर्दोगम से वो हो बेखबर,
बैठ कुर्सी पै चिकना घड़ा हो गया।

इमानदारी से सब कुछ पचाने लगा,
पेट पहले से उसका बड़ा हो गया।

कुछ न करना, चलाना हुक्म रौब से,
आदमी नर्म था अब कड़ा हो गया।

जुट गये चमचे आकार के चारों तरफ,
पहले जो एक था, अब घड़ा हो गया।

कुछ न पूछा खुदा ने किसी से कभी,
इस तरह वो खुदा से बड़ा हो गया।
□

१८

इन बड़े लोगों ने जिन्हें खुद से जुदा माना है,
उन्हीं मेहनत कशों को हमने तो खुदा माना है।

जिनके हाथों से बनी सवँरी है दुनियाँ सारी,
उनके हाथों को ही तकदीरे जहाँ माना है।

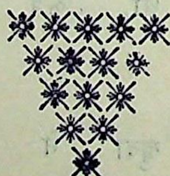
खून बहता है पसीना बनकर सदा ही जिनका,
उनके उस पसीने को ही गंगा जल माना है।

जिन्दगी भूख से लड़ते हुए ही गुजरी जिनकी,
हमने तो उनको ही कौम का रहनुमा माना है।

जाते खुद डूब जो औरों को बचाते अक्सर,
वे सहारों का उनको ही मसीहा माना है।

हम कहें क्या, ये चमन के परिन्दों से पूछलो,
वे जुबाँ गुलों ने किसको बागवां माना है ?

□



१६

हो देखना भी मुश्किल तो यह कैसी रोशनी ?
पहचान हो न मुमकिन तो यह कैसी रोशनी ?

फैली है रोशनी जहाँ सूरज की हर तरफ,
बुझती शमा दिखाये जो, ये कैसी है रोशनी ?

साजिश जो कर रहे हैं इन्सानों के खिलाफ,
पूछें लगाके आग वही, ये कैसी रोशनी ?

चश्मा लगा के अपने को धोखा हैं दे रहे,
पहचानों आँख खोल कर ये कैसी रोशनी ?

कहीं को भी किसी की भी हो है तो रोशनी,
लड़ते हो जिसके वास्ते ये कैसी रोशनी ?

रोशनी तो प्यार है हमदर्दी है दोस्ती,
जगाये जो प्यास खून की ये कैसी रोशनी ?

रोशनी को लोग तो परखते हैं अक्ल से,
जिसमें दखल न अक्ल का ये कैसी रोशनी ?

□



२०

अफसाने मेरी गद्दारी के अब उनकी गली तक जा पहुँचे,
दीवाने वतन इसहीलिए अब मेरी गली तक आ पहुँचे।

मजहब के लिए लड़ पड़ते हैं आज भी लोग जमाने में,
मालूम नहीं उनको बच्चे अब परखनली तक आ पहुँचे।

हंगामा मचा है गुलशन में, सब गुलबूटे हैं सकते में,
भँवरों की हिमाकत क्या कहिए अनखिली कली तक आ पहुँचे।

भूखे नंगे कमजोर हुए इन्सान हैं खतरे में लो बचा,
भटके हुए और गुमराह हुए अब उनकी गली तक आ पहुँचे।

भेड़ों को कच्चा चबाने की साजिश करके जो मिल बैठे,
भेष बदलकर भेड़िये वे सबही देहली तक आ पहुँचे।

आखिर तक साथ निभाने का दम भरते थे, हम साया थे,
पाटों के बीच फँसा हमको वे खुद किल्ली तक आ पहुँचे।

शिकवा औ शिकायत लोगों से बेमानी है, बेमतलब है,
चींटों की तो ये आदत है कि गुड़ की डली तक आ पहुँचे।

□

२१

मैं किसी पीर या पंडित का हम ईमान नहीं,
मैं तो इन्सान हूँ हिन्दू या मुसलमान नहीं।

खुदा तो प्यार है मन्जिल भी वही है असली,
राहे मजहब है इन्सान की पहचान नहीं।

मन्जिलें होती हैं अहम राहें नहीं होतीं हैं कभी,
बिन लड़े प्यार से चलना भी क्या आसान नहीं ?

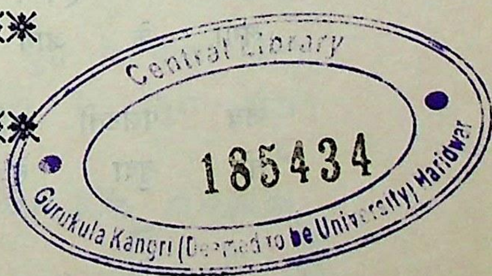
इन्सान को इन्सान का ही जो बनादे दुश्मन,
सिर्फ मजहब ही क्या वो मेरा भगवान नहीं।

मन्दिर और मस्जिद हैं राह के रोड़े सारे,
इनसे टकराके कभी मिलता है भगवान नहीं।

पीरओ पंडित से वेहतर है वे काफिर जिनका,
इश्के इन्सां के सिवा दीनों ईमान नहीं।

□





२२

कैसी वहशत है कि काँपते पत्ते,
चुप है हवा तो क्यों हाँफते पत्ते ?

अपने इर्द – गिर्द किसी साजिश को,
दहशत से शायद हैं भाँपते पत्ते।

बदलते तेवरों को भी मौसम के,
बीते हादसों से नापते पत्ते।

इनकी हरकात इन्हें कौन बताये,
गिरेबां - गैर में झांकते पत्ते।

शक का धुआँ है नजर में इनकी,
सबको निज आइने में आंकते पत्ते।

जब हवा चलती है तूफानी कभी,
हदों को अपनी ही लांघते पत्ते।

सुन परिन्दों से दरिन्दों की खबर,
खौफ से ताकते झांकते पत्ते।

इल्जाम हमेशा ही धरे औरों पै,
लगा के आग खुद ही तापते पत्ते।

जब पलटती हैं तरफ उनकी लपटें,
तो खुदा से पनहा मांगते पत्ते।

□

२३

औरो के किये पै है हर कोई परेशां होता,
कौन जो अपने किये पै है पशेमां होता ?

हंगामये हस्ती से तंग आके खुदा भी शायद,
बेवजूद है, अच्छा है वर्ना बेजुबां होता ।

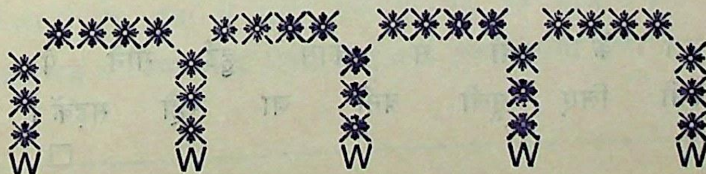
दुनिया के चलन को जो बना लेते हम भी अपना,
बेवफा वक्त हम पै भी क्यों न मेहरबाँ होता ?

जिन्दगी प्यार न होती, सिर्फ मजहब होता,
पत्थर के सनम होते, न चाक गिरेबां होता ।

जिन्दगी प्यार के नगमें ही गुन गुनाती अगर,
साथ देने को हसीं साजे जुलेखाँ होता ।

सोने के पिंजरे में रहने की न आदत होती,
उड़ते जाने को आसमां बेइन्तहाँ होता ।

गर अक्ल न इन्सां को खुदा ने बख्शी होती,
इन्सान तो होता पर जहाँ ये बेखुदा होता । □



२४

पहरे में भी तो सो न पा रहीं सड़कें,
किस कदर देखिए घबरा रहीं सड़कें।

किसी मोड पर अनहोनी हुई है शायद,
तभी तो हैं मातम मना रहीं सड़कें।

भीग जाती थीं कभी ही जो बारिश में,
अब तो हैं खून में नहा रहीं सड़कें।

जख्मी रिश्तों से बहे खून इन्सां को,
अपने सीने से हैं लगा रहीं सड़कें।

सैक्युलर खून रहा है सदा से सबका,
अपने तजुर्बात बता रहीं सड़कें।

आदमी चाँद पै पहुँचा है तब से ही,
आस्मां सरपै हैं उठा रहीं सड़कें।

बमे न्यूट्रोन की सुनके खवर लेकिन,
अक्ले इन्सां पै तरस खा रहीं सड़कें।

राह इन्सान को दिखाती थी कभी जो,
जाने क्यों आज हैं भटका रहीं सड़कें।

मंजिल का पता देके जो पहुँचाती थीं,
आज सबको हैं क्यों भरमा रहीं सड़कें।

चल के पांवों से क्रास हुई सीने पै,
इसी लिए सूली बनी जा रही सड़कें।

□

२५

सिर्फ गले मिल लेने से तो दूर तनाजा क्या होगा ?
दिल न मिले तो आपस की उल्फत में इजाफा क्या होगा ?

स्वांग गले मिलने का कर जो छुरा कमर में घोंपते हैं,
उनको कुरानोगीता भी पढ़ने से फायदा क्या होगा ?

जो बात सही तो कहते हैं पर साथ नहीं दे पाते हैं,
साहिल के तमाशाइयों को मौजों का इशारा क्या होगा ?

सैलाबे - हकीकत जानके भी जो डूबने को आमादा है,
ऐसे दीवानों को भला मझधारो किनारा क्या होगा ?

इन्सान खिलौना मिट्टी का जब जी चाहा तब तोड़ दिया,
पत्थर के बुतों को इससे भला और तमाशा क्या होगा ?

नामें खुदा पर इन्सां को मारने बाले भी ये अगर,
शैदाई खुदा के सच्चे हैं, शैतान भला फिर क्या होगा ?

पंछी हैं हम सब ही मगर एक ही पेड़ की डाल के हैं,
इस सच को अपनाने के सिवा और वक्त तकाजा क्या होगा ?
□

२६

हमसे वक्त के मारों को कहीं पनाह ना मिली,
हमारे दर्द से पुरनम कोई निगाह ना मिली।

जो कत्ल तो हुए हैं और वो भी बाजारों में,
उन्हें गवाह चश्मदीद कोई भी, आह! ना मिली।

अपने सिवा जहाँ पै लोग सब बेईमान है,
दरगाह से निकलने की कोई राह ना मिली।

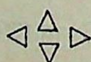
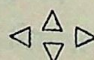
मजहबों की भीड़ में गिरा इन्सान मर रहा,
उसको उठाने वाली भी क्यों कोई बाँह ना मिली ?

ईमान बदचलन का कोई पता बताये क्यों ?
बस्ती में कोई भी नजर बेगुनाह ना मिली।

सारे रकीब खुश हैं पर मैं ही दुःखी हूँ एक,
तेरी भी मेहर हमको क्यों वल्लाह ना मिली ?

चाँद तो मेरी छत पै है, शैरो की चान्दनी,
दीये तले ही रोशनी लिल्लाह ना मिली।

□

२७

लुटी हसीना के दामन सा तार तार हूं मैं,
निकला जो दिल से उसी के वो दर्दे गुबार हूँ मैं।

अपने ही घर में अजनबी सा हुआ हूँ मैं,
अब किसी गैर से तारूर्फ का तलबगार हूँ मैं।

न कभी भूल से भी झांका आइने में उनके,
ये शराफत ही बरतने का खतावार हूँ मैं।

इसीलिए शायद कतराने लगे वे मुझसे,
उनके सब जुल्मो जफा का राजदार हूँ मैं।

मेरे बिन रातें भी जिनकी हैं जुल्फ सी काली,
वास्ते उनके भी एक चांद दॉगदार हूँ मैं।

□



२८

हर चीज चमकने वाली सोना तो नहीं होती है।
आँखों में नमी आँखों की रोना तो नहीं होती है।

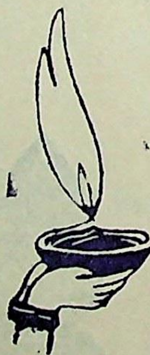
कम आब हसीं तारों को कौन लगाता है टीका ?
चाँद के मुह - स्याही दिठौना तो नहीं होती है।

ये तो नकाब ही है जो दिलचस्पी बढ़ा देता है,
वर्ना पर्दे में हमेशा ही हसीना तो नहीं होती है।

ओढ़ के अन्दाजे खुदायी है कौन खुदा बन जाता ?
बेखुदी है खुदायी जादू टोना तो नहीं होती है।

यूँ तो पाया है बहुत कुछ, पर पास रहा क्या अपने ?
प्यार से चीज कोई देनी खोना तो नहीं होती है।

□



२६

कैसे कहाँ मैं जाऊँ यूँ बिछड़के कारवां से ?
मेरी दुश्मनी गयी हो बस्ती के पासबाँ से।

मैं भटक रहा हूं राह में जैसे कटी पतंग,
जाने कहाँ गिरूँगा लुट फटके आसमाँ से ?

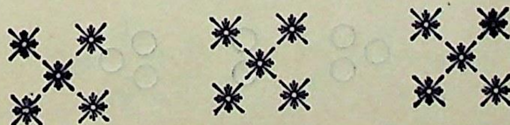
पहचान अपनी ही न रही, मंजिल क्या पता ?
सब तोड़ रिश्ते-नाते आया था आशियां से।

गया मिल था हम सफर पर बहुरूपिया था वो,
जो गया छुड़ाके दामन मेरे दस्ते नातवां से।

किनारों से रूठ किश्ती तूफां से खेलती है,
अंधेरों में कोन साथी अच्छा है कहकशां से ?

मेरे हाल पै हंसो तुम, नहीं इसका कुछ गिला,
तुम वो न दे सकोगे जो मिला नहीं खुदा से।

□



३०

बड़े तूफानों से भी शख्श वो न डरता है,
जो किनारों से कभी प्यार नहीं करता है।

भला किनारे कब किसी को बचाने आते?
वो ही जाता है जो भी डूबता है तरता है।

गया हूं ऊब किनारों से नजारा करता,
'खेलूँ मझधार से मैं' जी ये मेरा करता है।

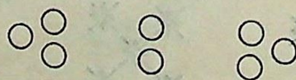
थपकियाँ पीठ पर देती हैं उसी को लहरें,
दौड़ आगोश में जो कोई उन्हें भरता है।

वो ही पाता है जो गहरे में उतरता, लेकिन,
मुर्दा दिल तो किनारे पर ही खड़ा मरता है।

मैं जी रहा हूँ जेरे साये जिसके दामन के,
लोग कहते हैं कि ये शख्श उस पे मरता है।

वास्ते जीने के मरना भी जरूरी है बहुत,
जो नहीं जीता है, वो मरके भी क्या मरता है?

□



३१

रास्ता उसके लिए कोई पुरखतर नहीं होता,
हालात से जो कोई बेखबर नहीं होता।

फराख नजरिया हो और दिल भी हो दरिया सा,
वास्ते बंद उनके कोई भी दर नहीं होता।

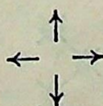
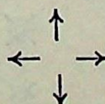
हिम्मते मर्दा की करता है खुदा भी मदद,
बुजदिल का तो जन्नत में भी गुजर नहीं होता।

दिल दर्द से जलता हो और आह न भरता हो,
कुर्बान उस पे क्या कोई वशर नहीं होता?

देता नहीं औरों को जो थोड़ी अहमियत भी,
मगरूर का कोई भी हमसफर नहीं होता।

अन्दाज में माहिर हो और तेज निशाना हो,
तीर का भी वर्ना कोई असर नहीं होता।

पक्के इरादे से आमादा हो गर इन्सां,
फिर कोई निशाना भी बेअसर नहीं होता।
□

३२

रिश्तों ने जकड़ा हमको जंजीर की तरह,
तभी तो म्यान में ईमान है शमशीर की तरह।

पहचान औ अहसास ही वजूद है इनका,
वर्ना तो हैं अपढ़ को ये तकरीर की तरह।

रिश्तों का जहर पीके ही जी रहे हैं हम,
पर वे समझे हैं वुते बेपीर की तरह।

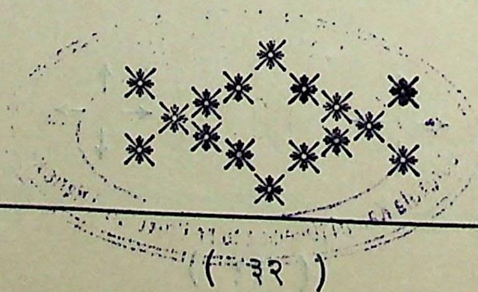
बेदर्द करने आये भी हमदर्द बनके जो,
बेदर्द खुद ही हो गये राहगीर की तरह।

वक्त की बात है कि वात भी उनकी अब तो,
मरहम थी कभी जो चुभे हैं तीर की तरह।

प्यार नहीं जिनमें बेजान हैं वे रिश्ते,
बदरंग और डरावनी तसवीर की तरह।

लाशों पै हमारे ख्वाबों की मनाते हैं जश्न जो,
उन्हें भी देते हैं दुआएं हम फकीर की तरह।

□



३३

न मँझधार मचला, न डूबा शिकारा,
साहिल पै हमको तो अपनों ने मारा।

चिराग उनके घर में जलाये जो हमने,
जला उनसे ही है नशेमन हमारा।

जो कांटे भी भरते तो होती गनीमत,
उन्होंने दिया दिया फाड़ दामन हमारा।

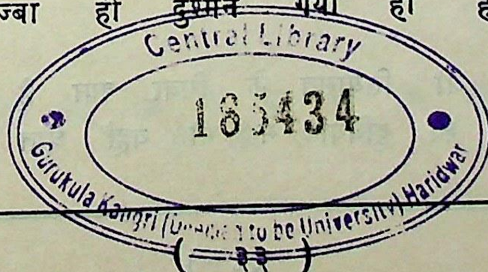
छिपे भीड़ में थे हम कातिल से बचकर,
उसे भी ऊन्होंने दिया था इशारा।

मुश्किल में उनकी जो हम काम आये,
गया हो जमाना ही दुश्मन हमारा।

चमकना था उनको अंधेरों के बलपर,
तभी तो डुबाया है सूरज हमारा।

हमें तो पराये भी अपनों से बढ़कर,
ये जज्बा ही दुश्मन गया हो हमारा।

□



३४

क्यों ये बिन बात यहाँ बात चले ?
अंधेरा ही अंधेरा यहाँ चिराग तले।

जलाये खुद को औरों को रोशनी बख्शे,
उसी शमा से लिपट यहाँ परवाना जले।

एक कदम भी न कभी जो प्यार चल सके,
मील दर मील यहाँ उसका अफसाना चले।

बढ़ाता हाथ नहीं कोई तरफ खारों की,
वे भी तो खार यहाँ जिनमें है गुलाब पले।

नाम रोशन हो जिन गुलों से चमन का,
जज्बये दिल यहाँ उनका चुपचाप जले।

जिनकी जली झुग्गियां हाथों से जिनके,
दामन वो पसारे उनकी चिलमन के तले।

मिटाए नामोनिशां तक जो अंधेरे का सदा,
वो भी छिपते हैं अंधेरे में ही सांझ ढले।

फितरत ओ सियासत के सिवा क्या है यहाँ ?
जज्बात कीं दुनियां में भी यहाँ घात चले।

□

३५

हाय ! फूलों की भी ये कैसी मजबूरी है,
बीच कांटों के ही गुजरती ये उम्र पूरी है।

फूल की जिन्दगी क्या है ? इतना समझ लो यारों,
खार से खाक तलक चलने की दस्तूरी है।

छोड़ संग कांटों का निकले भी चमन से गर ये,
गले पड़े या चढ़े सर पै, ये क्या जरूरी है ?

पड़ गये हाथ अगर धोखे से संग दिल के कहीं,
मसले जाने की ही होती उम्मीद पूरी है।

खारों में खिलके, लुटा खुशबू, खाक में मिलते,
वो शेख सादी है या शेर शाह सूरी है।

कुछ को तो खिलने का अहसास भी नहीं होता,
ख्वाब ज्यों धूल-ओ धुएं में ढके सिंदूरी हैं।

हंसने का मिलता है शायद इसीलिए ये सिला,
बगैर अश्कों के ये जिन्दगी अधूरी है।

□



३६

जिस्म में जब भी कोई कसक सिर उठाती है,
अजीब बात है औरत की याद आती है।

तन के तकाजों से तड़पती हुई हसरत के,
जब्र-ओ-जुल्म की आतिश में ये जल जाती है।

ये वो परछाई हैं जो घटती है न बढ़ती है,
नीचे कदमों के हमेशा दबाई जाती है।

दूध से जिसके संवरता है जिस्म दुनिया का,
अश्क वो पीके सदा जिंदगी चलाती है।

ये वो अश्को से बनी दर्द की पुतली है,
जो महफिलों में भी लाकर नचायी जाती है।

कफन में जिस के लिपटे हुए जज्बात हैं ये,
कोठों पै जिन्स की तरह सजायी जाती है।

ये कली वो जो किनारे सड़क के खिलती है,
नोच ले, तोड़ ले कोई, ये सबकी थाती है।

ये वो आतिश है जो वर्षा को जन्म देती है,
और हाथों से उसी के मिटाई जाती है।

□

३७

मैं तो औरत हूँ कहें लोग कोठे वाली है,
शहर का मैल बहे जिसमें गंदी नाली हैं।

निकल कफस से आसमां में उड़ें भी कैसे ?
हर तरफ बाज से लुटेरे और मवाली हैं।

चिराग तन के जला बैठे रोशनी के लिए,
जिन्दगी फिर भी अमावस सी सिर्फ काली है।

लबों पै नगमें हमारे हैं अश्क आँखों में,
हम वे मकाँ जो किराये के लिए खाली हैं।

समाजी कद्र - ओ - कीमत की बात जो करते,
आके अंधेरों में आंके वो गोरी काली है।

फरेब के मारे हैं हम जाएं तो कहाँ जाएं,
शाख से तोड़ा जिन्होंने था वे ही माली है।

□

—०—

३८

ये शरीफों का शहर पर ये गली बदनाम है,
वो सवेरा है यहाँ जिसे लोग कहते शाम है।

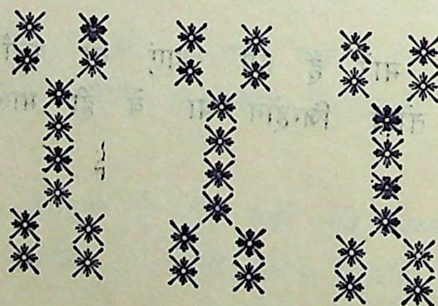
यहाँ इज्जत आबरू क्या ? दीन क्या ? ईमान क्या ?
कद्रोकीमत है किसी की कुछ तो वो बस दाम है।

भूखे जिस्मों में तड़पती प्यासी रूहें हैं यहाँ,
प्यार, ममता, दोस्ती, सब फालतू के नाम हैं।

स्याह अंधेरों के कफन में लिपटी जिन्दा लाश का,
तन की तिजारत के सिवा और क्या अंजाम है ?

इन शरीफों से कहो हरगिज न देखें आईना,
वर्ना लेंगे जान कि क्यों ये गली बदनाम है।

□



३६

हालात ने हर हाल में खिलना सिखा दिया,
खारों के दरम्यान भी हिलना सिखा दिया।

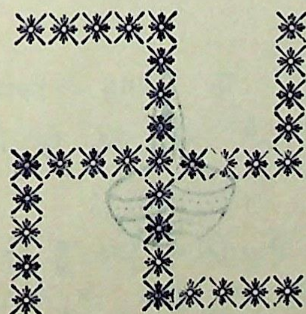
इज्जत - ओ - आबरू की डाली से झटक के,
बेशर्मी से बाजार में बिकना सिखा दिया।

उम्मीद - ओ - इमदाद की शमा बुझाकर,
सेज पै औरों की भी बिछना सिखा दिया।

पिरों के हार में सीने लगाकर हमको,
गोद में गुड़िया की तरह लिटना सिखा दिया।

वक्त की शह पैही अहसां ने तुम्हारे,
जब हम न उठ सके तो गिरना सिखा दिया।

□



४०

जो कुछ जिया है हमने, वो जी के तो देखिए,
बदले में जहर खून के भी पीके तो देखिए।

ऊँचाइयों का राजेहकीकत ही जाय खुल,
गहराइयों का सच भी जरा जीके तो देखिए।

जीते रहे हो आजतक चेहरे बदल बदल के,
बदल के आईना भी जरा जीके तो देखिए।

'सच' झूठ के अंधेरों में भी आता नजर तो है,
चश्मा नजर से अपनी हटाके तो देखिए।

दुनिया का रंग-ओ-ढंग ही जायेगा सब बदल,
दिल के मकां में गैर को लाके तो देखिए।

□



४१

हैं तो ये फूल जरा नीचे उत्तर आये हैं।
सीख के क्या क्या न जाने ये हुनर आये हैं।

मंजे हुए हैं बहुत फिर भी जिल्द पै इनकी,
जाने कैसे ये निशानात उभर आये हैं।

जाने क्या देखती आँखें हैं हममें इनकी,
नंगा करने पैंही ये हमको उत्तर आये हैं।

ऐसा लगता है कि अंधे हुए ये सावन में,
इसीलिए न बहम से ये उबर पाये हैं।

फूल न कोई कभी खुद गया है मंदिर में,
एक ये हैं कि खुद ही होके उधर आये हैं।

सुना है घूमते भी ये तो उन्हीं गलियों में,
रात में जिन से कभी हम न गुजर पाये हैं।

देखकर इनको हमेशा ही लगा है ऐसा,
ज्यों फरिश्तें ही इस जमीं पै उत्तर आये हैं।

ये तो जोगी हैं इन्हें औरों से क्या है लेना?
और तो और, वो डाली ही कुतर आये हैं। □

४२

बसते शरीफ लोग हैं चारों तरफ यहाँ,
गायब शराब का है वो मटका हुआ कहाँ ?

शर्मोहया का इनकी कुछ भी नहीं जवाब,
होता न हमाम में भी कोई नंगा यहाँ।

शराफत को ओढ़ लेते ये सफेद पोश,
फिर दाग आते ही हैं इनके नजर कहाँ ?

जिगर में दर्द हैं इनके तो जमाने भर का,
बाँट देते हैं तभी तो सबमें यहाँ वहाँ।

ये अदाकार तो हैं पर नहीं ऐसे वैसे,
ये चमक जाते घटा में बनके कहकशां।

लगायी है इन्होंने कुछ इस तरह बाजी,
हाथ में कफन लेके रहा देख है जहाँ।

अन्जाम इनके खेल का बस जानता खुदा,
लगता है बन जाए न कब्रिस्तान ये यहाँ।

□

४३

जुदा कहीं भी कंवल जल से हो नहीं खिलता,
बिना कंवल के यहाँ जल कहाँ नहीं मिलता ?

कोई तो बात रही होगी वर्ना वैसे ही,
छुपा सचाई कोई होट तो नहीं सिलता।

ये रंग जाति, ये मजहब सभी हैं बेमानी,
किसी तरह भी अगर दिल से दिल नहीं मिलता।

ये तो मुमकिन है कि हवा ही न चले कोई,
बिना हिलाए तो पत्ता तलक नहीं हिलता।

लोग तो झूठ का सूरज भी सिर पै ढो लेते,
मगर सच्चाई का तो सेक भी नहीं झिलता।

हुए हैं तन्हा गमों से कई दफा यूँ तो
मगर खुशी का कोई सिलसिला नहीं मिलता।

वक्त की संगदिली है या बात और कोई,
कि खुले दिल से तो अब दोस्त भी नहीं मिलता।

लाके किस मोड़ पै छोड़ा है कशमकश ने हमें,
गुबार दिखता हैं मगर कारवाँ नहीं मिलता।

□

४४

अपने चेहरों को भी जाने न अनजाने लोग,
खुद को दर्पण में भी आज न पहचाने लोग।

लगाके आग किया खाक नशेमन को पहले,
खुद ही फिर आगये हमको हैं समझाने लोग।

जख्म तो देते हैं पर देता नहीं मरहम कोई,
दर्द से हो गये कैसे हैं ये अनजाने लोग।

रिश्तों में दम कोई हो तो हो, नहीं मालूम,
दोस्त आते हैं नजर आज तो बेगाने लोग।

तलाशे जिन्दगी जारी है आसमां में आज,
जमीं के दर्द से क्यों हो गये बेगाने लोग।

भूख ही भूख जहां है टपकती छत के तले,
मयारे - जिन्दगी वहाँ नापते दीवाने लोग।

जुल्फ का साया मिला और न दर हरम का खुला,
खुद को पीने के लिए जाते हैं मयखाने लोग।

दबा रहा है गला इन्सानियत का हर कोई,
बंदकर आँख गये बैठ हैं सब दाने लोग।

बेहतर थे वे अंधेरे इन मौत के उजालों से,
नहीं पाते थे बना लोगों को निशाने लोग।

□

४५

अभी तो दूर न जाने कहाँ सवेरा है,
दिये जलाओ अभी तो घना अंधेरा है,

इन बहारों में खिजाओं का असर सा क्यों है ?
क्या किसी शाख पै उल्लू का यहाँ बसेरा है ?

ये शरीफों का शहर है यहाँ बचें किससे ?
बड़ा मासूम हर एक ही यहाँ लुटेरा है।

मंजिलें दूर, बहुत दूर, पहुंचना मुश्किल,
सभी राहों को राहजनों ने यहां घेरा है।

काम काज ही है वाजिब भी और लाजिम भी,
हक नतीजों पै भले ही न तेरा मेरा है।

हँसना हर हाल में बेहतर है अब तो दोस्त मेरे,
इन अंधेरों में भी तो साथ खुदा तेरा है।

दर्द को बाँट लो, खुशियां न और की छीनो,
दर्द मुस्काने लगे जब, तभी सवेरा है।

□

४६

हम तो खतरों से खेलते हैं तो गिरते हैं,
जो किनारे पै खड़े हो, न डूबते हैं तिरते हैं।

लोग तो डरते हैं चलते हुए अंधेरों में,
आस्तीनों में लिए सांप हम तो फिरते हैं।

यकीन किस पै करें, ये भी एक मुश्किल है,
आज सब नाक में तलवार लिये फिरते हैं।

लदी हमारी कमर पै है जिन्दगी जिनकी,
वे हमारे ही पाँव लेने को तुले फिरते हैं।

बेकरार कदमों को न मिली मंजिल कोई,
गुबार राहों में यूँही उड़ाते फिरते हैं।

बहार आने को ही है इसी ख्याल से हम,
फूल दो चार बचे थे, वो तोड़े फिरते हैं।

न आसमां ही मिला और जमीं भी छूट गयी,
सिर्फ त्रिशंकु हैं, अब उठते हैं न गिरते हैं।

□

४७

जो कभी दरिया थे आग के जलते हुए,
देखा है उनको भी बर्फ में ढलते हुए।

पूजती दुनिया है चढ़ते हुए सूरज को,
देखा है उसको भी शाम को ढलते हुए।

रोशनी बांटना मकसद था जिन्दगी का जिन्हें,
वो अंधेरों में मिटे घुटते हुए जलते हुए।

ये कशिश नूर की है या दर्द जलने का,
लिपटे परवाने शमा को देख जलते हुए।

कारवाँ चलते हैं, मंजिलें नहीं चलतीं,
जो भी पहुंचे हैं वो सिर्फ चलते हुए।

आये जब भी हैं अंजुमन में धनकुबेरों के,
हाय ! बेआबरू हो लौटे हाथ मलते हुए,

ये शहर आपका बेहतर नहीं जंगल से,
खुश थे सहरा में भटकते हुए जलते हुए।

ये आइने औं चेहरे भी मूबारक तुमको,
तलाशे रूह में हम भटकें आँख मलते हुए।

□

४८

जाने गुलशन में हवा कैसी चला देते हैं लोग,
गुलोखार में वहशत सी जगा देते हैं लोग।

खूबी ये है कि बदलकर के चेहरे ही अपने,
दरोदीवार में एक आग लगा देते हैं लोग।

झरते हैं फूल, झुलसती हैं बहुत सी कलियाँ,
चप्पे चप्पे में दहशत सी बसा देते हैं लोग।

कितने खुदगर्ज लुटेरे, ये चमन के दुश्मन,
दाँव पर गुलशन को ही लगा देते हैं लोग।

खून दे अपना बचाया है जिन्होंने ये चमन,
उनके नामों को भी तो भुना लेते हैं लोग।

दीनोईमान हो, इन्सां हो कि दुनियादारी,
खुद ही चौराहों पै नीलाम करा देते है लोग।

□

४६

घर फूँक तमाशा वो दिखाकर चले गये,
वो खुद को ही वतन पै मिटाकर चले गये।

मिट्टी वतन की उनको तो इतनी अजीज थी,
कि खुद को उसी में ही मिलाकर चले गये।

फर्क जाति धर्म का उनको फजूल था,
इन्सानियत पै खुद को मिटाकर चले गये।

हर गम से आश्ना थे वे, अहबावे दर्द थे,
राहे खुशी सभी को दिखाकर चले गये।

जुल्मोसितम से आदमी को मिल सके निजात,
फांसी खुशी से खुद को खिलाकर चले गये।

खुदगर्ज भी, गद्दार भी, दुश्मन वतन के जो,
वो आईना सभी को दिखाकर चले गये।

□

५०

अपनी किस्मत भी हमें आँख दिखाती क्यों है ?
हम गरीबों को ये दुनिया भी सताती क्यों है ?

चाँद की हमने तमन्ना ही नहीं की है कभी,
अपने घर चाँदनी नहीं आती क्यों है ?

हर शहर में जो कि तहजीब का जखीरा है,
जंगली आँखें ही हमें नजर आती क्यों हैं।

हर एक अहसान का बदला भी बुरा ही क्यों है ?
गुले उल्फत से भी बू-ए-जफा आती क्यों है ?

सोचते उड़ते हुए भूखे आसमां में हम,
बंदकर पिंजरे में ये दुनिया खिलाती क्यों है ?

हम तो मजबूर हैं औरों के लिए जीने को,
फितरती दुनिया हमें जिन्दा जलाती क्यों है ?

□

५१

ऐसे कुछ अन्दाज से ही चल रही है जिन्दगी,
भीगती, बरसात में भी जल रही हैं जिन्दगी।

खो गयी है राह ही मालूम मंजिल भी नहीं,
सिर्फ चलने के लिए ही चल रही हैं जिन्दगी।

छोड़ जंगल के अंधेरों में गये हों अपने ज्यों,
हाथ तंग हालात में, यूँ मल रही हैं जिन्दगी।

चेहरे पर चेहरे लगा ख्वाबों के मन्सूबों के रोज,
हर कदम पर हर घड़ी ही छल रही है जिन्दगी।

आज बेहतर भी नहीं गर, तो बुरी भी कुछ नहीं,
कल न होगी वैसी जैसी कल रही है जिन्दगी।

कुछ इस तरह से लोग हमको कर रहे हैं इस्तेमाल,
जाम तो उनके हैं अपनी ढल रही हैं जिन्दगी।

□

५२

नसे तमाम ही मेहनत की खूब दुखती है,
इस पै तुर्रा ये है – खेतों में भूख उगती है।

ये आरजू थी कि गुलशन में गुल खिलायेंगे,
जर्रे जर्रे की प्यास बनके धूल उड़ती है।

इस कदर रास हमें आगयें अंधेरे हैं,
अब तो आँखों में रोशनी भी खूब चुभती है।

गरीब जिन्दगी जलती इधर शमा की तरह,
सभी 'आबों' की उधर भीड़ खूब जुड़ती है।

ऐसा क्या है इस जमीं में, इन फिजाओं में,
जो भी बोते हैं, न उगता है, दूब उगती है।

शैतान की साजिश के सिवा क्या है ये ?
पेड़ आंगन में नहीं, फिर भी धूप रुकती है।

□

५३

चलते चले जाने का नाम जिन्दगी,
है कभी सुबह तो कभी शाम जिन्दगी।

जद्दो जहद तूफां से करते हुए,
दिये सा जलने का नाम जिन्दगी।

हंगामी हालातों के दरमियाँ,
राह बना चलने का नाम जिन्दगी।

अश्कों में डूबे जब खुशियों की नाव,
हिम्मत से तैरने का नाम जिन्दगी।

जिसमें देख खुद पै ही आये तरस.
ऐसे एक आईने का नाम जिन्दगी।

मौत भी तरसती है जिसके लिए,
ऐसी ही शै का है नाम जिन्दगी।

दौलत के भूखों के बीच हम तुम,
बनालें मुहब्बत को जाम जिन्दगी।

□

५४

वो उम्मीदों के महल सब ढह गये ।
हक से भी खुद बेदखल हम रह गये ।

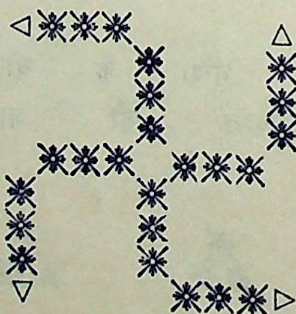
भी बहुत हमको जरूरत धूप की,
दरख्तों की ज्यादती सब सह गये ।

सब को मंजिल का पता हमने दिया,
और जा पहुंचे मगर हम रह गये ।

जिनको समझा राजदां हमदर्द था,
हाले दिल कातिल से वो सब कह गये ।

हमने जिनको था सहेजा आँखों में,
बेवफा आँसू वे बनकर बह गये ।

□



५५

क्या जिये हम जो नहीं संग गम रहे,
जख्म हो लेकिन नहीं मरहम रहे।

तेरी जुल्फों में कभी उलझा था दिल,
अब नहीं दिलकश वो पेंचोखम रहें।

वो मुलाकातें हसीं थीं. ठीक है,
उनकी यादों में क्यों चश्में नम रहे ?

कौन किसका साथ देता है सदा ?
फिर किसी के वास्ते क्यों गम सहें ?

जाने कितने मोड़ आते राह में,
फिर किसी एक पै ही क्यों रुक हम रहें ?

मंजिलों पर ही उतरना ठीक है,
घाट के ना घर के वर्ना हम रहें।

□

५६

दिन के सूरज ने तो दर्द और उभारे हैं,
जिन्दा गर हम हैं, सबब चाँद सितारे हैं।

कौन कहता है कि रोशनी नहीं आई,
क्या करें तन गयीं दरम्यान में दीवारे हैं।

बाहर के अंधेरों की तो आदत थी पड़ गयी,
हाय! अब दिल में भी आ आके वो मारे हैं।

फिर भी कर जद्दोजहद जलाते जो चिराग,
उन्हें भी लोग बुझाने में लगे सारे हैं।

क्या फर्क हम पै पड़ा सहर होने का ?
रात में जैसे थे वैसे ही सब नजारे है।

आसमां छूले भले ही मकान ऊचाँ उठ,
संगे बुनियाद अंधेरों में रहे बेचारे हैं।

□

५७

मौसम की मेहरबानी है अंधेरा न आस-पास,
फिर भी न जाने रोशनी क्यों आरहीं न रास ?

सूरज भी आजकल तो बेईमान लगे है,
क्योंकि छुअन में ठंढ का है धूप की अहसास।

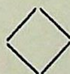
महफूज कोई भी तो नहीं, सियासत का दौर है,
लगता है बैठा घात में कोई हो आस-पास।

मिलता है कोई हँस के तो ये जान लीजिए,
मतलब है उसको आपसे कोई न कोई खास।

खुशरंग फूल दिखते बहुत हैं चमन में आज,
पर किसी भी फूल की दिलकश नहीं है बास।

अपना तो हाल बेहतर उस मौज से नहीं,
रह के समुद्र में भी न जिसकी मिटी हो प्यास।

□

५८

भटक रहें हैं जो सहरा में जल तलाशे हैं,
वो क्या पिलायेंगे जो पीके बहुत प्यासे हैं?

उन्हें हविस है, तो हो पर हमें जरूरत है।
कल तो प्यासे थे ही पर आज भी प्यासे हैं।

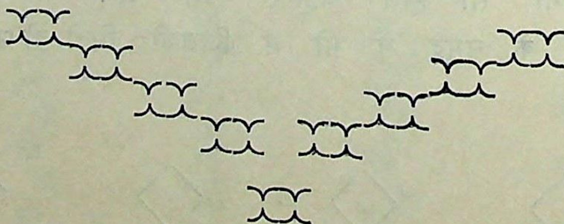
चूस के खून बुझाते हैं प्यास जो अपनी,
वास्ते उनके महज हम तो जिन्दा लाशें हैं।

हमें घुसने की इजाजत भी न जिन महलों में,
उनके पत्थर अपने हाथों ने ही तराशें हैं।

उनमें हममें है कोई गर तो फर्क इतना सा,
वो तमाशाई हैं और हम बने तमाशें हैं।

जिगर में दर्द का उनके नहीं अहसास कोई
यही वजह है बड़े वो हैं, हम जरासे हैं।

□



५६

कभी किसी को जहाँ में न गम मिलें यारों,
मिले सभी को खुशी चाहें कम मिले यारों।

बला से लाख बलाएं हो सर पे आशिक के,
पर न महबूब कभी चश्मेनम मिले यारों।

मुफलिसी में भी तो हँसते हुए जी लेते हैं,
गर न पत्थर के किसी को सनम मिले यारों।

उड़ाओ माल हमें इससे क्या मिला लेकिन,
एक रोटी तो हमें कम से कम मिले यारों।

हम गरीबों की न सँवरी हैं, न सँवरे किस्मत,
जुल्फ से उसमें बहुत पेचोंखम मिलें यारों।

नहीं जरूरी, मुनासिब हैं और वाजिब भी,
कारवाँ में तो सभी के कदम मिलें यारों।

कोई तन्हा हो, परेशाँ हो, बेसहारा हो,
कोई मिले न मिले, उसको हम मिलें यारों।

□

६०

रोशन करो चिराग, नहीं रात चाँदनी,
दे छूट अंधेरों को रही, आज चाँदनी।

जब बज्म में तारों की है चांद ही नहीं,
नाचेगी कैसे छेड़के नग्मात चाँदनी।

दामन के दाग चाँद के उससे छिपे नहीं,
होती कभी है फिर भी नहीं नाराज चाँदनी।

कर आज अकेले में रही मौज चाँद संग,
आज न मानेगी कोई बात चाँदनी।

चाहे डोलियां सजें या अर्थियां कहीं,
खामोश मुस्कराती है कमजात चांदनी।

आये न कभी घर में भी, दिल की तो बात क्या ?
लड़ाती है इश्क दूर से बदजात चाँदनी।

बेहतर बहुत चिराग हैं अंधेरों में साथ दें,
हो बेवफा दिखाती है जब आँख चाँदनी।

आदमी को चाहिए खुद ही बने चिराग,
फिर हर कदम पै खायेगी मात चाँदनी।

□

६१

किसी अजीज ने ये कैसी दिल्लगी की है,
कि मेरी आँखों में ख्वाबों ने खुदकशी की है।

रिश्ते अपनों से किये तर्क सभी जिनके लिए,
ये मेहरबानी उसी नेक अजनबी की है।

गुलाबे हुस्न पै उनके शवाब आया है,
ये बहारें तो मगर सिर्फ दो घड़ी की हैं।

सिजदा करने में तो हमको यकीं कभी न रहा,
आदतन हमने सदा दिल से बन्दगी की है।

निगाहें फेरलीं उस बेवफा ने पर फिर भी,
दिन भी उसके हैं, मेरी रातें भी उसी की हैं,

जाने क्यों फेर के मुह देते मुस्करा वे भी.
दिल जला करके मेरा जिनको रोशनी दी है।

अच्छी सूरत तो उन्हें दी पर अच्छा दिल न दिया,
आशिकों से तो खुदा ने भी दिल्लगी की है।

□

६२

हर तरफ रंजोअलम का था समा,
सैलाब अश्कों का न थामे था थमा।

क्या हुई खामोश इंदिरा की जुबाँ,
हो गया खामोश सारा था जहाँ।

कैसे किस पै अब यकीं कोई करे,
जान के दुश्मन बने जब पासवां।

करनी जिनको थी हिफाजत राह में,
उन ही मक्कारों ने लूटा कारवाँ।

अब हर एक गुल के लबों पर ये सवाल,
रूठ गुलशन से गया क्यों बागबां ?

बुझ गयी अमनो - अमां की वो शमा,
जिससे रोशन था कभी सारा जहां।

चाँद सूरज भी है मुमकिन ना रहें,
पर दिलों में वो रहेगी ही सदा।

□



६३

कौन कहता है कि इंसान भाई भाई हैं।
वे सिर्फ हिन्दु मुसलमान सिख इसाई हैं।

मजहब सिखाते मुहब्बत औ भाई चारा हैं,
हर एक ने रहमोंकरम की ही राह दिखाई है।

ये मजहबों को महज ओढ़ते बिछाते हैं,
यही वजह है ये कर बैंठते लड़ाई है।

चिराग सिर्फ जलाते हैं रोशनी के लिए,
इन्होंने आग घरों में मगर लगाई है।

अपने मंसूबों मुरादों तलक पहुंचाने में,
मजहब को सीढ़ी बना कामयाबी पाई है।

खुदा दिलों में आदमियों के नहीं है अगर,
तो फिर न दैरोहरम में भी ये सचाई है।

प्यार इन्सानों, से करना ही तो इबादत है,
वर्ना सब ढोंग है और खुद से बेवफाई है।
□

—

६४

ये आलमी अमन की उम्मीद का सितारा,
हमें जानोतन से प्यारा हिन्दोस्तां हमारा।

जंगल, पहाड़, नदियाँ, वादी – हसीं हैं ये सब,
खुशरंग इस वतन को कुदरत ने है सँवारा।

यहाँ आया था सिकन्दर फतह इस जमीं को करने,
जरा उनसे पूछ देखो–था क्या दबदबा हमारा।

ये अजीब अंजुमन है तहजीब और अदब का,
जो यहाँ जब भी आया, वही हो गया हमारा।

मजहब, जुबान, 'पहरन' – हैं जुदा जुदा हमारे,
हम 'हमवतन' हैं और एक कौमी निशां हमारा।

राह जो दिखा गये हैं, हमें गाँधी और गौतम,
जहाँ की सलामती है, उसी में भला हमारा।

रहे प्यार हमको अपने जमीन–ओ–आसमाँ से,
अपने वतन की खातिर हाजिर हो सर हमारा।

'दुनियां ही एक कुटुम्ब हो,' सब लोग भाई भाई,
'दारुल अमन' जहाँ हो, यही ख्वाब है हमारा।

□

६५

कितने अजीब सबके सब दिखने लगे हैं लोग,
नासूर बन समाज के रिसने लगे हैं लोग।

रुसवाइयों के बदले जिन्हें मौत थी कबूल,
खुद को ही खुद सुर्खियों में लिखने लगे हैं लोग।

ठोकर जिन्होंने मारी कभी ताज-ओ-तख्त को,
चाँदी के चंद टुकड़ों में बिकने लगे हैं लोग।

उल्फत की, दोस्ती की और दीन-ओ-ईमान की,
बिखराते फूल कब्रों पै मिलने लगे हैं लोग।

जंगल में होने लग रही तब्दील बस्तियां,
दरिन्दों की तरह घूमने फिरने लगे हैं लोग।

कुछ इस तरह से बढ़ रही है भूख आजकल,
मजबूर हो के हाट में बिकने लगे हैं लोग।

अपनी नजर पै हमको अब यकीं रहा नहीं,
सब दूध के धुले से ही दिखने लगे हैं लोग।
□

ØØ ØØ
ØØ ØØ

६६

ख्वाब जितने बुने जिन्दगी के लिए,
इतने बेचैन अब खुदकुशी के लिए।

चांद की बात हम छोड़ भी दें अगर,
पर दिया भी कहां रोशनी के लिए।

किस तरह बेवफा हो गया आदमी,
कुत्ते बेहतर हैं दोस्ती के लिए।

भेड़ियों को खुली छूट है आजकल,
स्यार तैनात हैं चौकसी के लिए।

लोग मजबूर, मुफलिस व भूखे रहें,
ये जरूरी बहुत चौधरी के लिए।

हाल मजदूर का होगा क्या उस घड़ी,
होगा 'रोबोट' जब नौकरी के लिए।

करनी हमको तरक्की है तेजी से अब,
आदमी चाहिए त्रासदी के लिए।

तोड़ दें पुल सभी दर्दों अहसास के,
लाजमी ये है अगली सदी के लिए

६७

हम जियें किस लिए ये बता दीजिए,
तुम खफा किस लिए ये जता दीजिए।

दिल चुराना किसी का बुरा कुछ नहीं,
फिर भी खुद को मुनासिब सजा दीजिए ।

हम अंधेरों में कब तक भटकते रहें,
अपने चेहरे से जुल्फें हटा दीजिए ।

है समन्दर भी नाकाफी जिसके लिए,
प्यास होटों की मेरे बुझा दीजिए।

दर्दोगम भी मिले तो हमें गम नहीं,
जब देखें तुम्हें मुस्करा दीजिए ।

जिंदगी का सफर ना अकेले कटे,
अपना साथी हमें ही बना लीजिए।

मेरी धड़कन है तू, मेरी सांसों में तू,
मैं सलामत रहूँ— ये दुआ कीजिए ।

तेरे सर की कसम! हम तेरे हैं तेरे,
अपने दिल में हमें बस बसा लीजिए।

६८

दिल तो होता ही कहाँ है उनके सीने में,
आती रहती है महक जिनके पसीने में,

दर्द बहते हुए अश्कों का वो क्या समझें,
लुत्फ आता जिन्हें खून के पीने में ?

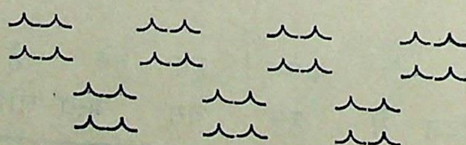
वास्ते जिनके तिजोरी है सिर्फ दैरोहरम,
करना क्या है उन्हें काशी में मदीने में ?

अटारियों पै छिपाते हैं रोटियाँ ये सब,
पहरे फिर बिठाते है ये उनके जीने में।

कोई डूबे या मरे – इनको लेना क्या है ?
कहाँ होती है जगह इनके सफीने में ?

ऐसे जख्मों के सिवा ये कुछ नहीं देते,
उम्र पूरी भी पड़े कम है जिनको सीने में।

खून उनका ही ये पीके जीते हैं सभी,
जो नहाते हैं सदा ही खुद पसीने में। □



६९

खेल ये कैसा सियासी चल रहा है,
आदमी ही आदमी को छल रहा है;

बातें करता है मसीहा की तरह,
चाल पर शैतान की ही चल रहा है।

हंसता नफरत से है उनपर ये गुलाब,
बीच जिन कांटों के खुद ये पल रहा है।

भूल से सूरज जिसे बैठा समझ,
हाय ! उस शोले से ही घर जल रहा है।

रोशनी में जिसका घर डूबा हुआ,
दिल में उसके ही अंधेरा पल रहा है;

अहसासे दर्दोगम से होके अजनबी,
औरों के कंधों पै चढ़ के चल रहा है।

एक की आँखों का सपना आंख से,
दूसरे का आंसू बनकर ढल रहा है।

बिन चले ही पा गया मंजिल कोई,
और कोई आज तक भी चल रहा है।

शोर तो करते बदलने का बहुत,
पर नहीं बदला जो ढर्रा चल रहा है।

७०

हम देखते हैं उनको चश्में बदल बदल के,
आते वही नजर हैं हर बार चहरे कल के।

बदले न उनके तेवर, नहीं तौर और तरीके,
वो आ रहें हैं सामने चेहरे बदल बदल के।

आवाज में है फर्क मगर जज्बात में नहीं,
वही बात बोलते हैं वे अल्फाज को बदल के।

फस्ले बहार आयी है चारों तरफ चमन में,
वो खूब खा रहे हैं सब पहरे बदल बदल के।

बदली न राहें आज भी, राहो बदल गये,
जो लूटें हम सफर को भी साथ साथ चलके।

चलते रहे हैं आज तक, हम तो रुके नहीं,
वैसा ही ये मुकाम भी, आये जहाँ से चलके।

गोया हमारा दिल न हुआ, एक फूल हो गया,
जब जी में आया, तोड़ के फेंका मसल मसल के।

ये वात भी तो ठीक है कि ढहते थपेड़े खाके,
प्यासे रहे किनारे, रहते जो पास जल के।

खुशियां जमाने भर की रहीं जिसमें वंद सदा,
हैं आज भी खड़े हम दर पै उसी महल के।

७१

दाल बिन पानी कभी गलती नहीं,
जिन्दगी भी प्यार बिन चलती नहीं।

ना हो सागर, ताल फिर भी चाहिए,
नाव सिकता में कभी चलती नहीं।

देख पत्रा शुभ घड़ी ढूंढों मगर,
बात जो होनी हैं, वो टलती नहीं।

जो भी चढ़ता है वो गिरता है जरूर,
सांझ को क्या धूप भी ढलती नहीं ?

बिन किये चाहने से कुछ होता नहीं,
मेहनत सदा क्या फूलती फलती नहीं ?

कर्म में विश्वास कर कोशिश करें,
वर्ना आशाएं किसे छलती नहीं ?

सोचिए, फिर हाथ उसमें डालिए,
आग में हर चीज क्या जलती नहीं ?

क्यों बुरा तुमको कहेगा कोई भी,
जो करोगे तुम कभी गलती नहीं।

□

७२

खो गया वो सवेरा कहाँ ?
थम गया जो अंधेरा यहाँ ।

किस गली में रुकी रोशनी,
डाल पायी न फेरा यहाँ ?

रोशनी है तो कैसी है ये ?
उल्लूओं का है बसेरा यहाँ ।

चैन से कोई सोता नहीं,
आशियाना है मेरा जहाँ ।

कैसे बचकर निकल जायें हम ?
हर कदम पर लुटेरा यहाँ ।

खौफ – ओ – दहशत हवा में घुली,
रहबरों का जो डेरा यहाँ ।

रातभर जिनसे लड़ते रहे,
दुश्मनों, ने है घेरा यहाँ ।
□

***
***

७३

बड़ा अजीव तेरा हमनें ये शहर देखा।
नजर में तीर छिपाये हर एक बशर देखा।

बात तो सब ही मुस्कराके करें हैं लेकिन,
रिसता होटों से सभी के यहाँ जहर देखा।

यूँ तो मासूम हैं हसीन इस शहर के सभी,
दिल में उनके भी छिपा तेज सा खंजर देखा।

यूँ तो होता है हर एक चीज का सौदा जगमें,
पर यहाँ हमने हर एक प्यार का तस्कर देखा।

रात तो चीखती चिल्लाती है हर रोज यहाँ,
खून से भीगा हुआ यहाँ का हर सहर देखा।

सिर्फ दो चार हैं डूबे हुए सुख–सागर में,
बाकी पर बरपा हुआ भूख का कहर देखा।

लोग लुटते है मगर खोलते नहीं मुंह तक,
वेश में राहजनों के यहाँ रहबर देखा।

जो न सोचा था कभी ख्वाब में भी कभी हमने,
वो भी हमने दो घड़ी भर यहाँ ठहर देखा।

□

७४

बीज नफरत के दिलों में बो रहा है आदमी,
राह में अपनी ही कांटे बो रहा है आदमी।

सिर्फ हिन्दू है या मुस्लिम, और वो कुछ भी नहीं,
ईमान का अपने जनाजा ढो रहा है आदमी।

सिर्फ लड़ने के लिए ही रह गए दैरो हरम,
बेच कर इन्सानियत को सो रहा है आदमी।

हर घड़ी अमनो अमाँ की बातें करता है बड़ी,
ढेर पर बारूद के पर सो रहा है आदमी।

औरों को बख्शेगा क्या जो लूटता अपनों को भी ?
हाल पर अपने ही फिर भी रो रहा है आदमी।

नापकर ऊँचाईयों को जो भी उसने पाया था,
आज गिर गहराइयों में खो रहा है आदमी।



७५

इन अंधेरों में जलाओ अब उम्मीदे चिराग,
इस चमन में जो सुलगती है बुझाओ अब वो आग।

कद्रो कीमत हैं बदल कैसे दिये हालात ने?
हंस चुगता दाना पानो चुग रहे हैं मोती काग।

एक चमन के फूल हैं सब, लड़ रहे आपस में क्यों?
खुशबू फैलाओ, बिखेरो हर तरफ अपना पराग?

खेलना औरों के हाथों में मुनासिब है नहीं,
नाचते जिनके इशारों पर है वे पूरे ही घाघ।

गुमराह क्यों होते हो? खुदको राह को पहचानिए,
इन्सानियत की अपनी ढपली पै मिलकर गाओ राग।

रहबरों! छोड़ो पिलाना दूध काफी हो गया,
बीन को कर बंद पिटारी में करो बंद अब ये नाग।

वक्त से डरिए, हमेशा साथ ये देता नहीं,
ताज पहने माथ पर भो लग कभी जाते हैं दाग।

□



पैसे से है आदमी को प्यार आजकल,
उसकी किसी से नहीं सरोकार आजकल।

दिलमें किसी के वास्ते जगह की क्या कहें?
घर का भी बंद कर लिया द्वार आजकल।

पूजा नमाज का करे कितना ही ढोंग वह,
अन्दर से फितरती है मक्कार आजकल।

बाते मदद की, प्यार की, इंसाफ की करे,
ठगता है वो अपनो को ही बदकार आजकल।

पूजा घरों से बढ़कर है इन्सानियत नहीं,
उठती है जिनके वास्ते तलवार आजकल।

लुट ही नहीं रहे हैं मर भी रहे हैं लोग,
तमाशा खड़ी देखती सरकार आजकल।

रिश्वत औ कमीशन का बड़ा जोर शोर है,
इनसे भरें हैं रोज के अखबार आजकल।

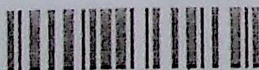
अपने सहीं हैं और बाकी है सब गलत,
इन्साफ का यही तो है मयार आजकल।

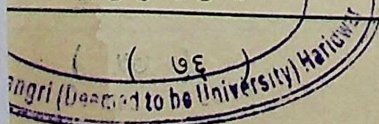
□



अपने सही हैं और बाकी हैं सब गलत,
इन्साफ का यही तो है मयार आजकल।







कवि परिचय



मेघा सिंह चौहान

जन्म तिथि- एक जनवरी सन् उन्नीस सौ बयालीस

पता- ग्राम नजीमपुर, पत्रा० जलालाबाद, जनपद—बिजनौर
प्रदेश—उत्तर प्रदेश।

शिक्षा- एम० ए० (अंग्रेजी) एम० ए० (संस्कृत) बी० एड०

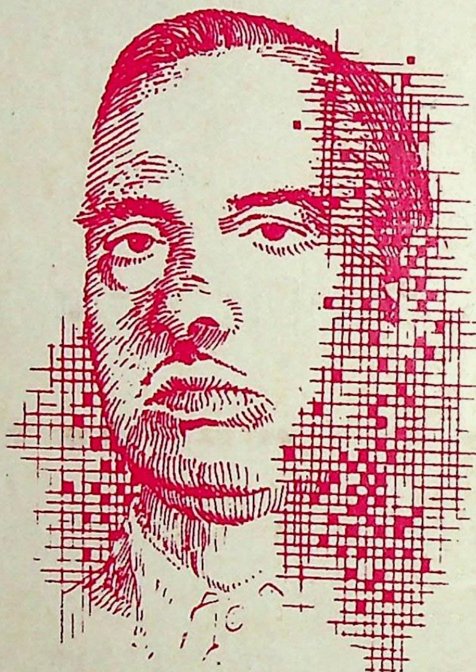
सम्प्रति- आदर्श ग्रामीण इ० कालेज चंदक, बिजनौर में अंग्रेजी प्रवक्ता के पद पर कार्यरत।

रचनाएँ- गीत, गज़ल, कवितायें, लघु कथाएं, कहानियाँ, व्यंग्य आदि विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित, आकाशवाणी नजीबाबाद से भी अनेक बार प्रसारित।

सम्पादन- सन् १९८३ से आदर्श कौमुदो (हि०मा०) का नियमित सम्पादन।

संस्थापक- वातायन (पजीकृत) समाज सेवी संस्था चंदक- बिजनौर

प्रकाशित- 'बूंदें दर्द की' (मुक्तक संग्रह)



हम बने कलम की नोक सदा, लिखते ही रहे; घिसते ही रहे,
चक्की में चने संग घुन की तरह पड़ते ही रहे, पिसते भी रहे।

मेघासिंह चौहान.

क्लासिक स्क्रीन प्रिंटर्स
गाजियाबाद.